

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 9: जड़ भरत का जन्म

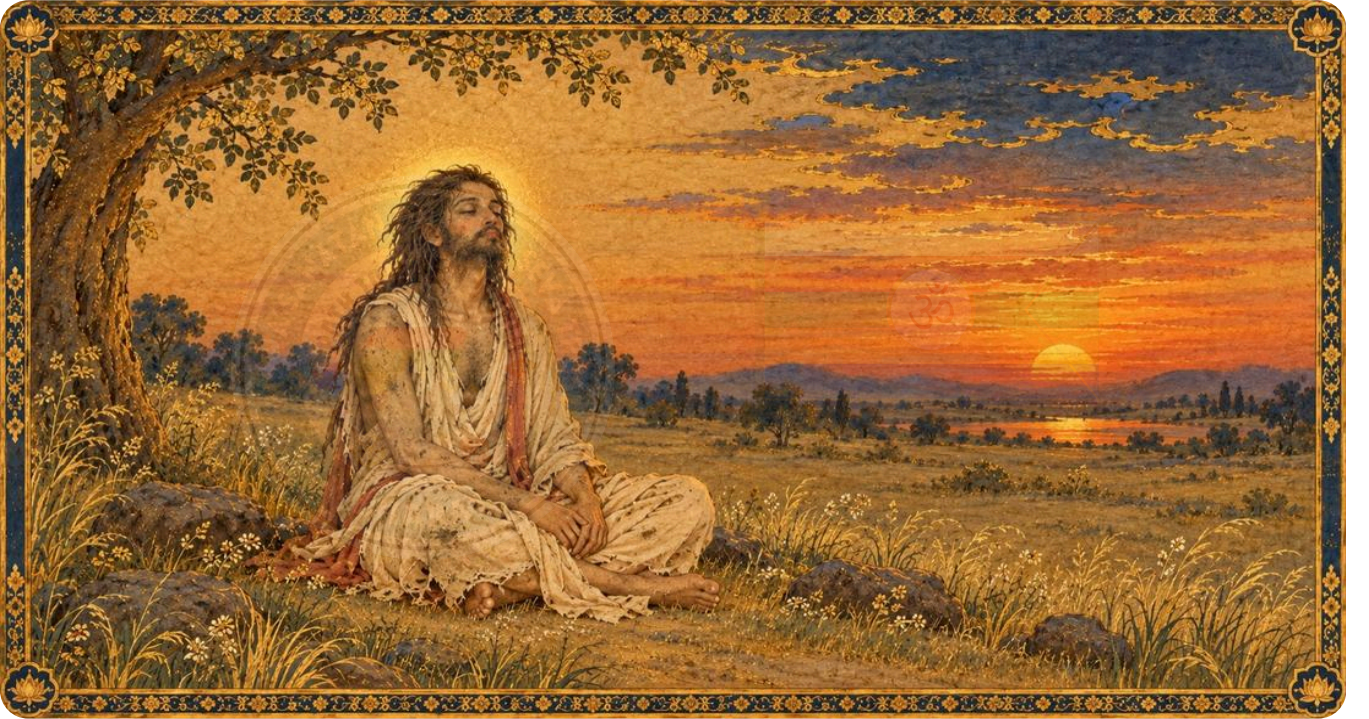
18 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक ब्राह्मण कुल में पुनर्जन्म लेकर और अपने समस्त पूर्वजन्मों को स्मरण करते हुए, महान् आत्मा भरत अपने ज्ञान को एक मूढ़, बहरे उन्मत्त के मुखौटे के पीछे छिपा लेते हैं — उनका हृदय भगवान् के चरण-कमलों को थामे, मान और अपमान से अछूता।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, महान् भक्त भरत, एक मृगछाँने के मोह से बँधकर, एक मृग के रूप में जन्मे — फिर भी अपने पूर्वजन्म की स्मृति धारण किए और पावन गण्डकी के तट पर वह देह त्यागकर पुनः भगवान् की ओर मुड़े। पंचम स्कन्ध का यह नौवाँ अध्याय उनके तीसरे और अन्तिम जन्म को

लेता है: एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में, एक ऐसी आत्मा जो आसक्ति से इतनी सतर्क थी कि उन्होंने जानबूझकर अपनी महानता को एक मूढ़, बहरे उन्मत्त के रूप के पीछे छिपा लिया। संसार उन्हें जड़ भरत — “अचल भरत” — कहकर पुकारने लगा और उनका उपहास करने लगा; किन्तु उस मौन, नीरव रूप के भीतर एक सिद्ध ऋषि की अम्लान महिमा प्रज्वलित थी। यह अध्याय एक चौंका देने वाले दृश्य के साथ समाप्त होता है जिसमें भगवान् की अपनी रक्षक शक्ति उन्हें मृत्यु से बचाने के लिए उठ खड़ी होती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 9 (नवम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: जड़ भरत का जन्म
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: अंगिरा ऋषि के वंश के एक पावन ब्राह्मण का घर, तथा वे खेत और देवस्थान जहाँ अन्तिम प्रसंग घटित होता है
- केन्द्रीय विषय: भरत का ब्राह्मण-पुत्र के रूप में तीसरा जन्म; किस प्रकार उन्होंने आसक्ति से बचने के लिए अपने ज्ञान को एक मूढ़ उन्मत्त के वेश में छिपाया; उपहास और कष्ट के बीच उनकी पूर्ण समता; और किस प्रकार भगवान् की रक्षक शक्ति, देवी के रूप में, उन्हें डाकुओं के एक दल द्वारा बलि दिए जाने से बचाती है
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 9, श्लोक 1–20
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

आठवें अध्याय में, महान् भक्त भरत, एक अनाथ मृगछौने से मोह कर बैठने के कारण, मृत्यु के समय उसी का चिन्तन करते हुए एक मृग के रूप में जन्मे। फिर भी भगवान् की कृपा से उन्होंने अपने पूर्वजन्म की स्मृति धारण की, पश्चात्ताप किया, और पावन शालग्राम में सावधान तप में रहकर, अपनी मृग-देह गण्डकी के जल में भगवान् पर हृदय स्थिर किए त्याग दी। यह अध्याय बताता है कि उनका आगे क्या हुआ — उनका तीसरा जन्म, और किस प्रकार मृगछौने के कठिन पाठ ने उन्हें असाधारण सावधानी से अपने हृदय की रक्षा करना सिखाया।

एक तीसरा जन्म, और एक छिपा हुआ ज्ञान

श्रीशुकदेव ने कहा, समय आने पर भरत ने पुनः जन्म लिया — इस बार महान् ऋषि अंगिरा के वंशज एक साधु ब्राह्मण के परिवार में, एक ऐसे गृहस्थ के जो तप, वेद-ज्ञान, आत्मसंयम और प्रत्येक सद्गुण से समृद्ध थे। उस घर की सन्तानों में, एक जुड़वाँ जोड़े में से एक वही परम भक्त और राजर्षियों में श्रेष्ठ भरत थे, जो अपनी मृग-देह त्यागकर अब ब्राह्मण के रूप में जन्म पा चुके थे।

भगवान् की कृपा से अपने समस्त पूर्वजन्मों की शृंखला को स्मरण करते हुए — और सबसे बढ़कर उस पतन को जो एक अकेली आसक्ति ने किया था — वे लोगों और उनके कार्यों में पुनः उलझने से अत्यन्त भयभीत थे। अतः उन्होंने संसार को अपने में खींचने का कोई कारण न देने का संकल्प किया। अपने मन में भगवान् के चरण-कमलों को दृढ़ता से थामे — वे चरण जो सुनने, स्मरण करने या स्तुति करने वालों के लिए कर्म के बन्धन तोड़ देते हैं — उन्होंने स्वयं को सबके समक्ष एक उन्मत्त, मूढ़, अन्धे और बहरे पुरुष के रूप में प्रकट किया।

तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥

tatrāpi svajana-saṅgāc ca bhṛśam udvijamāno bhagavataḥ karma-bandha-vidhvaṁsana-śravaṇa-smaraṇa-guṇa-vivaraṇa-caraṇāravinda-yugalam manasā vidadhad ātmanaḥ pratighātam āśaṅkamāno bhagavad-anugraheṇānusmṛta-sva-pūrva-janmāvalir ātmānam unmatta-jaḍāndha-badhira-svarūpeṇa darśayām āsa lokasya

अर्थ: उस जन्म में भी, स्वजनों के संग से अत्यन्त डरते और एक नए पतन से भयभीत, और भगवान् की कृपा से अपने पूर्वजन्मों की समस्त शृंखला को स्मरण करते हुए, उन्होंने अपने मन में भगवान् के चरण-कमलों को दृढ़ता से थामा — जो सुनने, स्मरण करने और गुणगान करने वालों के कर्म-बन्धन को नष्ट करते हैं — और संसार के समक्ष स्वयं को एक उन्मत्त, मूढ़, अन्धे और बहरे के रूप में प्रकट किया। (स्कन्ध 5, अध्याय 9, श्लोक 3)



पितृ-स्नेह से, ब्राह्मण पिता धैर्यपूर्वक अपने पुत्र को शुद्धता और पावन गायत्री की शिक्षा देने का प्रयास करते हैं, यद्यपि वह बालक, अपने छिपे ज्ञान की रक्षा करते हुए, प्रत्येक पाठ को ऐसे उलट देता है मानो वह सीख ही न सके (श्लोक 4-5)।

पिता का प्रेम, और बालक का छद्म

ब्राह्मण, जिनका हृदय पितृ-स्नेह से उस बालक से बँधा था, उसके लिए सभी पावन संस्कार सम्पन्न किए और, उपनयन के पश्चात्, उसे स्वच्छता और आचरण के नियम सिखाने का प्रयास किया, यह मानते हुए कि पिता को अपने पुत्र को शिक्षा देनी ही चाहिए। किन्तु वह बालक पिता के सामने ही, मानो, सब कुछ उलटा कर देता। यद्यपि ब्राह्मण ने महीनों उसे पढ़ाने का श्रम किया, वे उसे केवल पावन गायत्री और ॐकार ही सिखा सके — और वह भी बालक टूटी-फूटी, अटकती हुई रीति से ही दोहराता। इससे पहले कि पिता की अपने पुत्र को विद्वान् देखने की आशा पूर्ण हो पाती, वे मृत्यु द्वारा उठा लिए गए; और उनकी पत्नी, अपने जुड़वाँ बच्चों को सौतन को सौंपकर, अपने पति के पीछे चली गई। पिता के देहान्त पर, बालक के बड़े सौतेले भाइयों ने, उसे एक निराशाजनक मूढ़ मानकर, उसे पढ़ाने का समस्त विचार छोड़ दिया।

इस मौन विफलता के पीछे एक गहरी शिक्षा छिपी है। पिता जो भी अनुशासन पुत्र को सिखाना चाहते हैं — स्वच्छता, विधि-विधान, गायत्री के पावन अक्षर — वे सब केवल आत्मा में भगवान् के प्रति अनुराग जगाने के लिए हैं; कर्तव्य का यही एकमात्र प्रयोजन है। जड़ भरत ने लगातार तीन जन्मों की अखण्ड भक्ति से वह अनुराग पहले ही प्राप्त कर लिया था जिसे जगाने के लिए यह शिक्षा दी जाती है। वे बुद्धि की कमी से हठी नहीं थे; जो पहले ही पूर्ण हो चुका था उसे दोहराने से उन्हें कुछ और पाना शेष नहीं था। उनके पिता का प्रेम सच्चा था और उनका परिश्रम निष्ठापूर्ण, फिर भी बालक की चुप्पी उस व्यक्ति की चुप्पी थी जो पहले ही पहुँच चुका है, आरम्भ से मना करने वाले की नहीं (श्लोक ४)।

वह सन्त जिसका संसार ने तिरस्कार किया

अब उस कोमल दबाव से भी मुक्त होकर, भरत भीतर पूर्णतया अपनी इच्छानुसार रहने लगे। जब लोग — वे “दो पैरों वाले पशु,” जैसा शास्त्र अविवेकियों को व्यंग्य से कहता है — उन्हें उन्मत्त, मूर्ख, बहरा-गूँगा कहते, तो वे उसी वर्णन के अनुरूप ही बोलते और व्यवहार करते। जो भी काम दूसरे उन पर थोपते, वे कर देते, और जो भी उन्हें मिलता खा लेते — श्रम से या भिक्षा से मिला, स्वेच्छा से दिया गया या अनिच्छा से, प्रचुर या अल्प, स्वादिष्ट या बिगड़ा हुआ — किन्तु कभी जिह्वा के सुख के लिए नहीं। क्योंकि उन्होंने सर्व-आनन्दमय, नित्य-चेतन और स्वयं-प्रकाशमान आत्मा के साथ अपनी एकता का साक्षात्कार कर लिया था, और मान-अपमान तथा प्रत्येक द्वन्द्व से उत्पन्न सुख-दुःख में अब देह से तादात्म्य नहीं करते थे।

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिर्मुन्मत्तजडबधिरमूकेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो

वेतनतो वा याच्यया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मृष्टं कदन्नं वाभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् ।

नित्यनिवृत्तिनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसम्भावितदेहाभिमानः ॥ ९ ॥

शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः

कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञयातज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥ १० ॥

sa ca prākṛtair dvipada-paśubhir unmatta-jāḍa-badhira-mūkety abhibhāṣyamāṇo yadā tad-anurūpāṇi prabhāṣate karmāṇi ca kāryamāṇaḥ parecchayā karoti viṣṭito vetanato vā yācñayā yadṛcchayā vopasāditam alpaṁ bahu mṛṣṭaṁ kadannaṁ vābhyavaharati paraṁ nendriya-prīti-nimittam nitya-nivṛtta-nimitta-sva-siddha-viśuddhānubhavānanda-svātma-lābhādhigamaḥ sukha-duḥkḥayor dvandva-nimittayor asambhāvita-dehābhimānaḥ śītoṣṇa-vāta-varṣeṣu vṛṣa

ivānāvṛtāṅgaḥ pīnaḥ saṁhananāṅgaḥ sthaṇḍila-saṁveśanānunmardanāmajjana-ajasā mahāmaṇir ivānabhivyakta-brahma-varcasaḥ kupaṭāvṛta-kaṭir upavītenoru-maṣiṇā dvijātir iti brahma-bandhur iti saṁjñayātaj-jña-janāvamato vicacāra

अर्थ: साधारण, अविवेकी लोगों द्वारा उन्मत्त, मूढ़ या बहरा-गूँगा कहे जाने पर वे उन्हीं नामों के अनुरूप बोलते और करते; जो भी काम थोपा जाता वह कर देते, और जो भी मिलता खा लेते — मज़दूरी या भिक्षा से, स्वेच्छा से दिया या नहीं, थोड़ा या बहुत, अच्छा या बिगड़ा — कभी इन्द्रिय-सुख के लिए नहीं, क्योंकि उन्होंने अपने ही आत्मा का शुद्ध, स्वयंसिद्ध आनन्द प्राप्त कर लिया था और सुख-दुःख के द्वन्द्वों के बीच देह से तादात्म्य नहीं करते थे। शीत-ग्रीष्म, वायु-वर्षा में बैल के समान अनावृत शरीर, हृष्ट-पुष्ट अंगों वाले, भूमि पर सोने और कभी स्नान न करने से धूल में सने, उनकी भीतरी महिमा मैल से ढके महामणि के समान गुप्त, कमर पर एक मैला वस्त्र और शरीर पर मैला जनेऊ लिए, उनके मूल्य से अनजान लोगों द्वारा “द्विज मात्र” और “नाम का ब्राह्मण” कहकर तिरस्कृत, वे इस प्रकार विचरण करते रहे। (स्कन्ध 5, अध्याय 9, श्लोक 9-10)



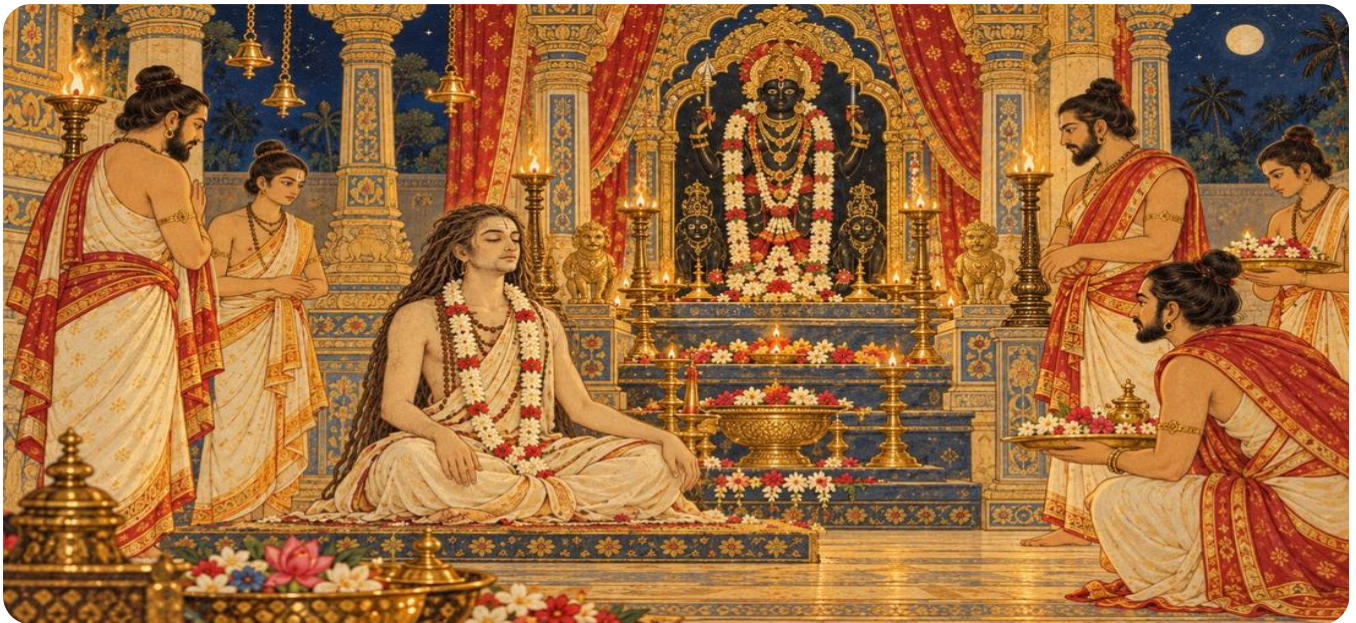
खेतों की रखवाली और जुताई पर लगाए गए, जड़ भरत बिना फल या सुख की चिन्ता किए काम करते हैं, जो भी मिलता उसे अमृत के समान खाते हुए, उनकी दिव्य महिमा धूल के नीचे मैल से मलिन मणि के समान छिपी (श्लोक 9-11)।

उनके भाइयों ने, उनकी महानता से अनजान, उन्हें खेतों की रखवाली और जुताई पर लगा दिया; और वे जैसा कहा जाता वैसा कर देते, इस बात से उदासीन कि भूमि समतल है या ऊबड़-खाबड़, कि उन्होंने अधिक किया या कम, टूटे चावल, भूसी और जले हुए अवशेष तक को ऐसे खाते मानो वे अमृत हों।

एक भयंकर बलि के लिए पकड़े गए

फिर एक भयावह मोड़ आया। डाकुओं के एक दल के सरदार ने, पुत्र की कामना से, देवी भद्रकाली को एक नरबलि अर्पित करने का निश्चय किया। किन्तु जिस पुरुष को उन्होंने चुना था वह रात में भाग निकला, और डाकू, अन्धकार में खोजते हुए, जड़ भरत के पास आ पहुँचे जब वे मृग और सूअर से खेतों की रखवाली करते बैठे थे। उन्हें प्रत्येक अंग में निर्दोष पाकर — और इसलिए, उनकी दृष्टि में, एक उत्तम बलि-पशु —

उन्होंने उस मौन ऋषि को रस्सियों से बाँध लिया और, अपने चेहरों पर क्रूर हर्ष लिए, उन्हें देवी चण्डिका के मन्दिर में ले गए।



डाकू उस मौन सन्त को स्नान कराकर, सजाकर और माला पहनाकर देवी की वेदी के सामने बिठा देते हैं, यह न जानते हुए कि उन्होंने एक ऐसी आत्मा पर हाथ रखा है जो अनन्त के साथ एक और भगवान् को प्रिय है (श्लोक 14-16)।

वहाँ उन्होंने उन्हें स्नान कराया, नए वस्त्र पहनाए, आभूषणों, चन्दन और मालाओं से सजाया, और उन्हें अर्पण के समस्त विधानों के साथ भद्रकाली की प्रतिमा के सामने बिठा दिया, गाते और अपने ढोल बजाते हुए। फिर उनके पुरोहित ने एक अभिमन्त्रित तलवार उठाई, उस ऋषि को मारने के लिए। इन सबके बीच, जड़ भरत पूर्ण शान्ति में बैठे रहे, तनिक भी व्याकुलता बिना, उनकी शरण भगवान् के चरण।

भगवान् की रक्षा

किन्तु ऐसी एक महान् आत्मा के विरुद्ध ऐसा कर्म — एक ऐसी आत्मा जो अनन्त के साथ एक हो चुकी थी, जो किसी से बैर न रखती और प्रत्येक प्राणी की मित्र थी — टिक न सका। देवी भद्रकाली इसे सह न सकीं। उस सन्त की असह्य आध्यात्मिक महिमा से प्रज्वलित होकर, वे अकस्मात् एक भयंकर रूप में प्रतिमा से प्रकट हुई, और उसी तलवार से जिसे डाकूओं ने उठाया था, उन्होंने उन दुष्टों को मार गिराया जिन्होंने भगवान् के चरणों में शरणागत एक जन को धमकाने का साहस किया था। उनकी हिंसा पूर्णतया उन्हीं पर लौट आई।



उस सन्त की ही आध्यात्मिक महिमा से प्रज्वलित होकर, देवी भद्रकाली वेदी से प्रकट होकर उस मौन भक्त की रक्षा करती हैं, और डाकुओं की हिंसा उन्हीं पर लौट आती है
(श्लोक 17-20)।

श्रीशुकदेव ने राजा परीक्षित से कहा, यह कोई बड़ा आश्चर्य नहीं है। जिन आत्माओं ने देह के साथ अपनी झूठी पहचान की गहरी उलझन सुलझा ली है, जो हर प्राणी को अपना ही मित्र और अपना ही स्वरूप मानते हैं, जो किसी से द्वेष नहीं करते और जिन्होंने भगवान् के चरणों में शरण ले ली है — ऐसी आत्माओं की रक्षा स्वयं सदा-जागृत भगवान् सब ओर से करते हैं, अपने अथक सुदर्शन चक्र से और देवी जैसे रूपों के माध्यम से। जहाँ भगवान् के चरण ही एकमात्र शरण हैं, वहाँ किसी दिशा से भय नहीं आ सकता।

न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसम्भ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवतानिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥

na vā etad viṣṇudatta mahad-adbhutam yad asambhramah sva-śiraś-chedana āpatite 'pi vimukta-dehādy-ātma-bhāva-sudṛḍha-hṛdaya-granthīnām sarva-sattva-suhṛd-ātmanām nirvairāṇām sākṣād bhagavatānimiṣāri-varāyudhenāpramattena tais tair bhāvaiḥ parirakṣyamāṇānām tat-pāda-mūlam akutaścid-bhayam upasṛtānām bhāgavata-paramahamsānām

अर्थ: हे विष्णुदत्त (परीक्षित), यह कोई बड़ा आश्चर्य नहीं कि गर्दन पर तलवार गिरते समय भी ऐसे सन्त पूर्णतया अविचलित रहें — वे जिन्होंने आत्मा को देह से तादात्म्य करने की दृढ़ गाँठ ढीली कर दी है, जो समस्त प्राणियों के मित्र और आत्मा हैं, जो किसी से बैर नहीं रखते, और जो, जहाँ कोई भय नहीं ऐसे भगवान् के चरणों की शरण लेकर, स्वयं सदा-सतर्क भगवान् द्वारा अपने परम आयुध से चारों ओर से रक्षित हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 9, श्लोक 20)

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

अतीत के कठिन पाठ हमें विवेकी बना सकते हैं। मृगछौने के द्वारा भरत के पतन ने उन्हें इतनी सावधानी सिखाई कि अगले जन्म में उन्होंने आसक्ति के साथ कोई जोखिम ही नहीं लिया। हमारी अपनी पिछली भूलें, ईमानदारी से स्मरण की गई, हमारी भावी शक्ति का स्रोत बन सकती हैं।

सच्ची महानता को मान्यता की आवश्यकता नहीं। जड़ भरत ने संसार को स्वयं को मूर्ख कहने दिया और एक बार भी अपना बचाव नहीं किया। भगवान् में सुरक्षित आत्मा के पास न कुछ सिद्ध करने को है, न बचाने को; दूसरों की राय उस पर से समस्त शक्ति खो देती है।

समता ही साक्षात्कार का चिह्न है। मान हो या अपमान, अच्छा भोजन हो या बुरा, कठोर श्रम पर लगाया जाए या छोड़ दिया जाए, जड़ भरत वही रहते। यह अखण्ड समता, स्वयं को अमर आत्मा के रूप में जानने में निहित, सच्चे ज्ञान का फल है।

भक्त की शरण भगवान् के अपने चरण हैं। तलवार के सामने बिना काँपे, जड़ भरत रक्षित थे क्योंकि उन्होंने केवल भगवान् की शरण ली थी। जो भगवान् को अपनी शरण बनाते हैं, उनकी रक्षा किसी भी संकट से कहीं बड़ी शक्ति करती है।

सन्त के प्रति की गई कोई हानि सचमुच सफल नहीं होती। जड़ भरत के विरुद्ध उठाई गई हिंसा उन्हीं पर लौट आई जिन्होंने उसे उठाया था। भगवान् के प्रति समर्पित और सबके मित्र एक आत्मा को हानि पहुँचाना केवल स्वयं को हानि पहुँचाना है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

जड़ भरत की कथा में एक विचित्र स्वतन्त्रता है जो हमें चुपचाप चुनौती देती है। लगभग वह सब कुछ जिसकी रक्षा में हम अपना जीवन बिता देते हैं — अपनी प्रतिष्ठा, अपनी गरिमा, समझे और सम्मानित किए जाने का अपना अधिकार — उन्होंने सहज ही छोड़ दिया। उन्होंने संसार को स्वयं को मूर्ख समझने दिया, उसकी अवमानना को एक मैले चीथड़े की तरह पहना, और भीतर, सारे समय, एक ऐसी शान्ति धारण किए रहे जिसे एक उठी हुई तलवार भी विचलित न कर सकी। हमसे उनके बाह्य छद्म का अनुकरण करने को नहीं कहा जाता; वह उनका अपना अनन्य मार्ग था, उनकी अपनी कठिन-अर्जित सावधानी से गढ़ा। किन्तु हमें उनकी आन्तरिक स्वतन्त्रता में आमन्त्रित किया जाता है — एक ऐसे हृदय की स्वतन्त्रता जिसने संसार की स्वीकृति की आवश्यकता छोड़ दी है क्योंकि उसने अपना समस्त मूल्य भगवान् में पा लिया है। हमारी कितनी बेचैनी इसी से आती है कि दूसरे हमारे विषय में क्या सोचते हैं, उसे सँभालने से। जड़ भरत हमें जीने का एक और मार्ग दिखाते हैं: उस भार को रख देना, भगवान् में अपनी शरण लेना, और यह जान लेना कि जब हम स्वयं का बचाव करना छोड़ देते हैं, तब हमसे कहीं बलवान् कुछ पहले से ही हमारी रक्षा कर रहा है।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, एक छोटे-से अपमान या गलतफ़हमी को बिना अपना बचाव किए बीत जाने दीजिए। जब कोई आपको ग़लत समझे, अनुचित रूप से टोके, या अनदेखा करे, तो समझाने और अपनी छवि की रक्षा करने की इच्छा को पहचानिए — और उसे कोमलता से छोड़ दीजिए, उस क्षण को भगवान् को अर्पित करते हुए इन शब्दों के साथ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” जैसे जड़ भरत ने किया, संसार की राय को वहीं रहने दीजिए जहाँ वह गिरती है, और अपना ध्यान भीतर की उस आत्मा की ओर मोड़िए जिसे कोई अपमान छू नहीं सकता। समर्पण के उस छोटे कर्म में, आप भगवान् के चरणों में शरणागत आत्मा की निर्भय स्वतन्त्रता का थोड़ा स्वाद पाते हैं।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का नौवाँ अध्याय जड़ भरत का जन्म कहता है — महान् भक्त का तीसरा और अन्तिम मानव-जीवन। एक पावन ब्राह्मण कुल में पुनर्जन्म लेकर और अपने बीते हुए हर जन्म का स्मरण करते हुए — सबसे अधिक इस बात से सतर्क होकर कि एक अकेली आसक्ति ने ही कैसे उन्हें एक बार गिरा दिया था — उन्होंने अपनी सिद्ध चेतना को मूढ़ता, बधिरता और उन्माद के आवरण में छिपा लिया, ताकि संसार उन्हें पुनः उलझन में न खींच सके। उन्होंने उपहास और कठोर श्रम को अखण्ड समता से सहा, मान और अपमान से समान रूप से उदासीन, उनकी दिव्य महिमा धूल के नीचे एक मणि के समान गुप्त। और जब डाकुओं के एक दल ने उन्हें बलि देने के लिए पकड़ लिया, तब भगवान् की अपनी रक्षक शक्ति देवी के रूप में उठकर उनके बन्धकों को मार गिराने के लिए प्रकट हुई, क्योंकि उनकी हिंसा उन्हीं पर लौट आई। उनकी कथा उस आत्मा की निर्भय स्वतन्त्रता को प्रकट करती है जो कोई मान्यता नहीं चाहती और अपनी समस्त शरण भगवान् में लेती है — एक ऐसी आत्मा जिसकी रक्षा स्वयं भगवान् चारों ओर से करते हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, नवम अध्याय, “Bharata reborn for a second time in a Brahmana family।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-9-the-birth-of-jada-bharata-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट